REVIEW OF RESEARCH

ISSN: 2249-894X
IMPACT FACTOR : 5.2331(UIF)
VOLUME - 7 | ISSUE - 1 | OCTOBER– 2017

# स्त्री विमर्श की चुनौतियाँ

डॉ आभा एस. सिंह
सहायक आचार्य एवं प्रमुख, हिन्दी विभाग
वी. एम. वी. कॉमर्स, जे. एम. टी. आर्ट्स व जे. जे. पी. साइन्स कॉलेज, वर्धमान नगर, नागपुर.

किसी भी समाज में विमर्श का होना इस बात की पुष्टि करता है कि समाज परिवर्तन पसंद है। विमर्श नाम सामाजिक परिवर्तन का संकेत सूचक है। वर्तमान में कई तरह के विमर्श आकार लेते हुए दिखाई देते है। जब बात स्त्री विमर्श की हो तो यह और अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है कि नये प्रतिमानों तक पहुंचने से पूर्व एक दृष्टि उन ऐतिहासिक किरदारों पर डालनी होगी जिन्होंने उस समय अपना परचम लहराया जब विमर्श जैसी कोई संकल्पना ही नहीं थी।

भक्ति काल को मूलतः सामाजिक सांस्कृतिक परिवर्तन काल के रूप में देखा जाता है। इस कठिन दौर में समय की धार से विपरीत चलती मीरा अपने समय के समाज को चुनौती देती है। वह यह निर्णय खुद लेती है कि उसका आराध्य उसका पति हो या परमात्मा यह तय करने का अधिकार केवल उसका है। पूरुष समाज के वर्चस्वप्रिय सिद्धांत को मीरा ने मानने से इनकार कर दिया और परम्पराओं को कलंकित किए बिना ही अपना रास्ता अलग कर लिया। अकेली सेना और अकेला सिपहसालार सब कुछ मीरा ही थी। बौद्धकाल ने स्त्री के हर रूप को स्वीकार किया। जैन धर्म ने स्त्री को माता की उपमा के साथ स्वीकार किया। मीरा से माता तक स्त्री ने अनेक सफर की यातनाओं को चुनौती दी। चाहे चाँद बीबी हो या रानी दुर्गावती सभी ने अपने समय की नब्ज को समझा और विवेकपूर्ण निर्णय किया। नूरजहां अपने समय की पैनी शासक रही है। मुगल शासन को आकार और विस्तार देने में नूरजहां की महत्वपूर्ण भूमिका थी। वह जहांगीर के समय की सबसे शक्तिशाली महिला थी । महाराज की अनुपस्थिति में उसे दरबार लगाने का और जनता की समस्याओं को सुनने का भी अधिकार था। नूरजहां के नाम से चाँदी के सिक्के चला करते थे। मुगल काल में नूरजहां जैसा रुतबा न पहले किसी का था ना बाद में किसी को मिला।

सावित्रीबाई फुले एक ऐसा नाम है जो स्त्री आदर्श के रूप में प्रतिष्ठित है। सावित्री बाई ने समाज में स्त्री शिक्षा की नींव रखी। समाज के तिरस्कार और अपमान को सहन किया लेकिन शिक्षा का रास्ता नहीं छोड़ा। विधवा विवाह,छुआछूत मिटाना,महिलाओं की मुक्ति और दलित महिलाओं को शिक्षित करने के लिए समाज के विरोध का सामना किया। सामाजिक मुद्दों के लिए महिलाओं को जागृत किया। उन्होंने उस समय दलितों के लिए अपने आँगन में एक कुआं खोदा जिस समय लोग उनकी परछाई भी नहीं छूते थे। सावित्रीबाई एक सशक्त महिला थी जो विमर्श के नए प्रतिमान को स्थापित करती है।

इस तर्क को नकारा नहीं जा सकता कि भारतीय समाज में विशिष्ट महिलाओं की संख्या मुट्ठीभर है। स्त्री विमर्श के केंद्र में वह महिलाएं हैं जो इस मुट्ठी के बाहर है। वे महिलाएं जो बिल्कुल आम है। जिनकी बेड़ियाँ अभी भी बंधी हुई है। नारी के प्रश्न, उनकी समस्याएं आज के सवाल नहीं है। कई महिलाएं तो ऐसी है जो यह भी नहीं जानती की वे जिस समस्या,अपमान और सवालों से गुजर रही है उसके विश्व पटल पर क्या मायने है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारत का संविधान लागू हुआ और भारत लोकतन्त्र रूपी मजबूत धरातल पर खड़ा हो गया। विडंबना किन्तु यह है कि संविधान द्वारा प्रदत्त समानता के अधिकार को नारी विमर्श की दृष्टि में असमानता और असंतुलन ही कहा जाएगा। 'समानता' की यह विडंबना ही है कि नारी का संघर्ष आज भी समानता के लिए ही है। पीड़ादायी यह भी है कि कानून ने स्त्री को अधिकार दिए,कानून बनाएं परंतु जहां स्त्री सुरक्षा के लिए एक कानून बनता है वहीं चार अपराध उस पर हो चुके होते हैं।

स्वाधीन भारत के संविधान ने अपना दायित्व निभाने में कोई कसर नहीं छोड़ी। विगत पचास सालों में महिला अत्याचार एवं उत्पीड़न से अवगत होकर देश की संविधान सभा ने अनेक कानूनी प्रावधानों को पारित किया। 'हिन्दू विवाह अधिनियम 1955 के माध्यम से नारी के अधिकारों को सुरक्षित रखा गया है। 'दहेज प्रतिषेध अधिनियम 1961' जैसे अनेक कानून स्त्री के संरक्षण के लिए बनाए गए है जो हिन्दू विवाह अधिनियम से लेकर हिन्दू विवाह विच्छेद अधिनियम, गर्भ का चिकित्सकीय समापन अधिनियम,अनैतिक व्यापार निवारण अधिनियम' आदि अनेक संवैधानिक अधिकारों को सुरक्षित रखा गया।[1] आश्चर्य लेकिन इस बात का है कि जैसे जैसे स्त्रियों की सुरक्षा को लेकर कानून बन रहे है वैसे वैसे उनके प्रति अत्याचार भी बढ़ रहे हैं। अपराध हो रहे हैं।

सनातन काल से ही मानव समाज स्त्री को एक सम्मान सूचक सम्बोधन के आधार पर तौलता आया है। वह सम्बोधन कभी माँ तो कभी भाभी तो कभी दीदी या पुत्री या पत्नी के रूप में रहा है। यह संबोधन समाज की स्त्री के प्रति तय की गई सोच की सूचना है। स्त्री वही स्वीकार्य है जो इन रूपों में अलंकृत होती है। वास्तविकता यह है कि पुरुष वर्ग चाहता है कि स्त्री की परिभाषा वह तय करें। समाज ही नहीं तो परिवार में भी पुरुष शासक की तरह आचरण करता है और स्त्री उसकी निरीह प्रजा बनी रहती है। ऐसी प्रजा जिसके भाग में केवल राजा की जयजयकार करना लिखा है।

'मनुष्य ने आदिम अवस्था से गुजरते हुए अपने अनिश्चित्र मुश्किल और आशंकित जीवन को सुरक्षित, निश्चित तथा आरामदायक बनाने के लिए 'घर' जैसी दिव्य सपनों वाली संस्था का निर्माण किया। इसकी मूल इकाई स्त्री और पुरुष परस्पर पूरक बनकर सहयात्री बनते हैं। इस घर नामक संस्था ने स्त्री को संस्कारगत कैदी बना दिया।[2] स्त्री इस घर रूपी संस्था की इतनी आदि हो चुकी है की वह हर जगह इसी घर की तलाश करती है। मानव वर्ग दो भागों में बटा हुआ है,स्त्री और पुरुष। यह विभाजन ही दरअसल संतुलित नहीं है। असंतुलन का ही परिणाम है कि पुरुष हर नए क्षेत्र में प्रवेश कर तरक्की पाता गया और स्त्री घर गृहस्थी में समाती चली गई। मर्यादाओं से भरी चुनौतियों को समाज ने स्त्री के चारों ओर फैलाया लेकिन कालांतर में स्त्रियों ने बखूबी अपने आप को उड़ान भरने के लिए प्रेरित किया।

स्त्री विमर्श जिस अस्तित्व के संकट से कराह कर जन्मा है वह चित्र अब काफी कुछ परिवर्तित हो गया है। कुछ सामाजिक संगठनों के प्रयासों से और काफी कुछ कानूनी प्रक्रिया के चलते स्त्री अब उस स्थिति से निकल चुकी है जो प्रारंभ में दिखाई देती थी। सफलता लेकिन सभी के हिस्से नहीं आई है। इक्कीसवी सदी आने के बावजूद आज भी बहुत सी नारियां है जिनके लिए कहीं भी कुछ भी नहीं बदला। समाज आज भी पितृसत्ताक दृष्टिकोण को प्रधान समझता है। हालांकि नवजागरण काल से स्त्री के सवालों पर गंभीरता से बहस होने लगी है। पितृसत्ताक समाज द्वारा थोपे जा रहे निर्णय विमर्श के विषय है।

ग्रामीण क्षेत्र हो या सुदूर प्रांत हर जगह महिलाओं का एक वर्ग ऐसा भी है जो महिलाओं के अधिकारों से अनभिज्ञ है। इन सबके बावजूद जैसा की ऊपर संकेत किया जा चुका है कि विपरीत परिस्थितियों के बाद भी महिलाओं ने अपनी स्थिति में अभूतपूर्व परिवर्तन किया। 'आज महिलाओं की मौजूदगी विधानसभा और संसद तक है,हालांकि

महिला आरक्षण विधेयक पिछले पंद्रह सालों से भी अधिक समय से लटका हुआ है। परूष प्रतिनिधियों द्वारा बिल का विरोध हो रहा है। आज भी दहेज की समस्या बनी हुई है,परिवार द्वारा स्त्रियों की उच्च शिक्षा पर रोक लगाई जाती है,सामाजिक हिस्सेदारी,आर्थिक आत्मनिर्भरता जैसी समस्याएं मौजूद है। स्त्रियों की समस्याओं का नए सिरे से महिमा मंडन हो रहा है।

भारतीय समाज अपनी पहचान धर्मनिष्ठ समाज के रूप में देकर प्रसन्न होता है। कई बार स्त्रियाँ भी इस धर्म संस्था की पैरवी करती दिखाई देती है। वास्तविकता जबकि यह है कि धर्म की मार स्त्रियों को ही ज्यादा कचोटती है। धर्म के नाम पर महिलाओं को मर्यादा का पाठ पढ़ाया जाता है। देवदासी प्रथा इसका जीता जागता उदाहरण है जिसे हम आधुनिक समाज के मुंह पर करारा तमाचा कह सकते है। विज्ञान युग की क्रान्ति के बावजूद आज भी चिकित्सा और आर्थिक सुरक्षा से वंचित कई महिलाएं दक्षिण के जंगलों में,मथुरा,वृन्दावन में मात्र रोटी की चाह में अनिच्छा से भजन कीर्तन करती मिल जाती है। बाबा, फकीर,संतों का लबादा ओढ़ने वालों के अनुयाइयों में स्त्रियॉ की संख्या सबसे अधिक है। स्त्री विमर्श के अंतर्गत हमें जाती,वर्ग,लिंग के साथ साथ धर्म को भी समाविष्ट करना चाहिए।[3]

जहां एक ओर स्त्री विमर्श से अनभिज्ञ स्त्रियाँ विमर्श के लिए चुनौती है वहीं दूसरी ओर औद्योगीकरण की आँधी में विज्ञापन जगत ने जिस तेजी से स्त्री की उपभोक्ता छवि को प्रभावित किया है वह भी चिंतनीय है। कहने में संकोच नहीं कि स्त्री ने एक तरह से विज्ञापन जगत में खुद को अर्पित कर दिया है। स्त्रियाँ यदि आकर्षण से अस्तित्व की लड़ाई जीतना चाहेगी तो यह अनुचित होगा। विज्ञापन जगत हो या मीडिया या फिर सौंदर्य प्रतियोगिता ही क्यों ना हो स्त्री सब जगह सहज उपलब्ध समझी जा रही है। विज्ञापन जगत ने तो मान लिया है कि स्त्रियाँ मांस का वह टुकड़ा है जिसकी सहायता से बाजार ग्राहक रूपी प्राणी का शिकार करता है। विज्ञापन चाहे ब्लेड का हो या मेटाडोर का,गद्दे का हो या सीमेंट का सभी में स्त्रियों को इस तरह से प्रस्तुत किया जाता है मानों स्त्री हर जगह पर फिट बैठने वाला कोई सामान है। बाजार ने स्त्री की छवि को ऐसा गढ़ा है मानों वह हर क्षेत्र में उपयोग में आने वाले संसाधनों में सहज उपलब्ध है। इसी की अगली कड़ी में सौंदर्य प्रतियोगिताएं भी आती है। यह प्रतियोगिताएं स्त्री के चारों ओर स्त्री की संपूर्णता का ऐसा मायाजाल बुनती है कि कुछ प्रतिशत स्त्रियाँ यह मान लेती है कि सौंदर्य ही संपूर्णता है।

महिलाएं निरंतर नई नई भूमिकाओं में आँकी जा रही है। नई चुनौतियों का सामना करती हुई वह नए नए प्रतिमानों को भी स्थापित करती जा रही है। नए उपमान और नए रूपक गढ़ रही है। साहित्य का क्षेत्र भी स्त्रियों की दस्तक से अछूता नहीं है। वैसे भी हिन्दी साहित्य ने पहले से स्त्री की लेखनी का लोहा माना ही है। वर्तमान में कविता,कहानी,उपन्यास,कथेतर साहित्य सभी में यदि स्त्री और पुरुष साहित्यकारों की गणना की जाए तो स्त्री बल अधिक दिखाई देगा। 'यदि कथाकार-आलोचक प्रियदर्शन के शब्दों में कहे तो-स्थिति यह है की स्त्री ही कविता की मुख्यधारा की दावेदार है। अपनी विविधता के बावजूद कोई कविता स्त्री रचनाशीलता से जोड़कर देखे जाने का एक सहज आग्रह पैदा करती है तो यह इसलिए की इसके पीछे एक स्त्री दृष्टि दिखाई देती है।[4]

स्त्री विमर्श ने कुछ ही वर्षों में स्त्री के अस्तित्व के प्रश्नों को आंदोलन का स्वरूप देकर उसकी चर्चा की है और समाज की आँखों को खोलने का जो काम किया ही वह प्रशंसनीय है। 'पाश्चात्य लेखिका-विचारक सिमोन द बरुआ कहती है की औरत पैदा नहीं होती बनाई जाती है। सिमोन की दृष्टि में नारी वह सब कुछ है जो पुरुष नहीं है। पुरुष उसे अन्या घोषित कर उसे पाने की कामना करता है।'[5]

आधुनिक युग स्त्री के अधिकार की चर्चा तो करता है परंतु उसे साकार नहीं कर पाता। स्त्रियों ने स्वंयम अपने मौन संघर्ष से अपनी बेड़ियों को ढीला किया है। आज वह समाज में पुरुष के कद के बराबर अपना कद लेकर आई है। घर से लेकर बाहर तक आर्थिक सामाजिक हर तबके में वह संतुलन करती है। पुरुष समाज अपने अहंकार में उस संतुलन को बौना बना देती है। टी-वी, फिल्म और मीडिया के बाजारवाद ने स्त्री का वस्तुकरन किया है और यह स्थिति चिंतनीय है। स्त्री की सदियों से पुरुष प्रधान समाज से चली आ रही लड़ाई यहां आकर और ऊर्जा मांगती है क्योंकि अब यह लड़ाई भूमंडलीकरण के विरुद्ध भी क्रुद्ध हो जाती है। स्त्री विमर्श स्वतन्त्रता से प्रारम्भ हुआ और स्वछन्दता के मोड

पर आकर रुक गया है। यहां स्त्री विमर्श अस्तित्व विमर्श की पहल करता है। स्त्री विमर्श के नए प्रतिमानों में अस्तित्व की पहल प्रमुखता से दिखाई देती है।

वर्तमान में विमर्श की स्थिति एक्सिलेटर पर खड़े उस व्यक्ति जैसी है जो ना आगे जा रहा है ना पीछे क्योंकि कुछ भ्रमित मुद्दों में इसे भी मान लिया गया है। कुछ ऐसे भी मुद्दे है जिनके होने ना होने से किसी भी तरह का अंतर दिखाई नहीं देता। महंगाई,भुखमरी,बेरोजगारी जैसे अनेकों मुद्दों में इसे जोड़ देने से इसे नजरंदाज नहीं किया जा सकता। मुद्दे गौण होने से उनका महत्व गौण नहीं होता। स्त्री विमर्श भूमंडलीकरण के दौर में अधिक परिष्कृत हुआ है और अस्तित्व के उत्तरार्ध तक पहुंचा है।

## सदर्भ-

1] ममता कालिया के कथा साहित्य में नारी चेतना- डॉ. सानप शाम पृ क्र - 30
2] स्त्री विमर्श के प्रश्न और महादेवी वर्मा- डॉ. देशराज वर्मा पृ क्र - 06
3] वागर्थ- स्त्री विमर्श -नए मुद्दे - रूपेश कुमार यादव - इन्टरनेट
4] वहीं- भारतीय संदर्भ में स्त्रीवाद स्थानीय मुद्दों को लेकर चलता है- इन्टरनेट
5] मंतव्य - 13